Research Paper

Volume : 2 | Issue : 7 | July 2013 • ISSN No 2277 - 8179

भारतीय प्रशासन के पर्यावरण में उभरती प्रवृत्ति
Emerging Trend in Ecology of Indian Administration

Political Science

KEYWORDS : भारतीय प्रशासन, पर्यावरण , नियामकीय कार्य, निषेधात्मक कार्य,भूमंलीकरण।

Dr.Surya Bhan Singh

Assistant Professor & Co-ordinator Deptt of Political Science, Uttarakhand Open University, Haldwani ,Nainital (263139)

ABSTRACT

प्रशासन शून्य में काम नहीं करता है।वह एक पर्यावरण में काम करता है ।वह पर्यावरण प्राकृतिक नहीं होता है।वह सामाजिक होता है।जिसमें समाज के विविध पक्ष होते हैं–जैसे संवैधानिक,सामाजिक,राजनीतिक और आर्थिक पर्यावरण आदि देश काल में बदलाव के साथ इस पर्यावरण की प्रकृति में भी परिवर्तन आता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में हमने भारतीय प्रशासन के पर्यावरण का अध्ययन किया गया है कि स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटिश दासता के दौर में इसकी प्रकृति नियामकीय थी। ब्रिटिश प्रशासन जनमानस को दबाव में रखकर कार्य करता था, क्योंकि अंग्रेजो का प्रमुख उद्देश्य भारत से लाभ कमाना था।जबकि स्वतंत्रता के उपरान्त संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया।अब प्रशासन जनता के दबाव में जनता की सुविधा के लिए सभी आवश्यक भूमिका का निर्वहन करता है, क्योंकि अब सरकार जनता द्वारा निर्वाचित है,जिसका अस्तित्व जनता के व्यापक समर्थन पर निर्भर करता है ।इस लिए अब प्रशासन जनता के दबाव में, जनता के सेवक रुप में कार्य करता है ।

21वीं शदी को लोकतंत्र के विस्तार की शदी कहें तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी ।क्यों कि आज के दौर में तानाशाही शासन व्यवस्था भी अपने को ,लोकतान्त्रिक कहते हुए गौरवान्वित होते हैं।ऐसे में नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी निभाने वाले प्रशासनिक व्यवस्था की प्रकृति क्या होगी ।यह महत्वपूर्ण सवाल सामने खडा हो जाता है ।इसका जबाब यह है कि शासन की प्रकृति ही प्रशासन का पर्यावरण तैयार करता है ।यदि शासन तानाशाही है तो ,प्रशासन की प्रकृति नियामकीय होगी और उसका प्राथमिक कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना होता है ।जबकि यदि शासन लोकतान्त्रिक है तो प्रशासन जनता के दबाव में और जनसेवक के रुप में कार्य करेगा और उन समस्त दायित्वों का निर्वहन करेगा जो प्रत्येक नागरिक को स्वस्थ जीवन जीते हुए ,व्यक्तित्व के चहुमुखी विकास का अवसर प्रदान कर सके ।

यदि इसे हम भारत के संदर्भ में देखे तो स्वतंत्रता के पूर्व अग्रेंजों के शासन का उददेश्य स्वयं अपना हित सिद्ध करना था ,इसलिए प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी और प्रमुख कार्य था कानून व्यवस्था को बनाए रखना ।और इस दायित्व का निर्वहन जनता को दबाव में रखते हुए करते थे ।जबकि स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में संसदीय लोकतंत्र के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया ।जिससे प्रशासन के कार्य करने की दशाएं बदल गई और प्रशासन के लक्ष्य भी बदल गये और भूमिका नकारात्मक से सकारात्मक हो गई । भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भारत के शामिल होने से इसमें और भी परिवर्तन दिखाई दे रहा है ।इन सभी पक्षों का अध्ययन इस शोधपत्र में किया गया है ।

स्वतंत्रतापूर्व भारतीय प्रशासन – स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय प्रषासन के पर्यावरण में किस प्रकार का परिवर्तन दिखाई देता है।उसका अध्ययन करने से पहले हमें स्वतन्त्रतापूर्व भारतीय प्रषासन के पर्यावरण के सम्बन्ध में जानना नितांत आवष्यक है,क्योंकि स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय प्रषासन के पर्यावरण को जानने से यह जानने में सहयता मिलेगी कि वो कौन से महत्वपूर्ण कारक थे,जिसने स्वतंत्रता के उपरान्त इसके पर्यावरण में आमूलचूल परिवर्तन कर दिये जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं कि स्वतंत्रता के पूर्व भारत देष ब्रिटिष दासता का षिकार था।ब्रिटिष षासन का उद्देष्य लोकहित न होकर एन–केन–प्रकारेंण अपने साम्राज्य का निजी हित था।इसलिए उनका प्रमुख उद्देश्य कानून व्यवस्था को बनाए रखना था।जिससे उनकी शोषण परक नीतियों के क्रियान्वयन में किसी प्रकार का कोई अवरोध न आये।इसके लिए वे जनता पर नाना प्रकार से दबाव बनाकर कार्य करते थे।. इसमें जनता के काई अधिकार नहीं थे ।उनके ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति केवल दायित्व थे।

स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय प्रशासन –अब हम उन पक्षों का अध्ययन करेंगें जिसने भारतीय प्रषासन के पर्यावरण में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है इसके तहत हम जिन पक्षों का अध्ययन हम करेंगे वे निम्नलिखित हैं

संविधान में उद्देश्य –संविधान के द्वारा निर्धारित उद्देष्य भारतीय संविधान की प्रस्तावना के द्वारा भारतीय प्रषासन के सम्मुख कुछ उद्देष्य निर्धरित किये गए हैं।जो इस प्रकार है –न्याय,स्वतंत्रता,समानता,बंधुत्व और राष्ट्रीय एकता तथा न्याय की स्थापना।इसमें सामा. जिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना पर विशेष बल दिया गया है।जिसका स्पश्ट प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 38 में किया गया है।न्याय के साथ में स्वतंत्रता के सिद्धान्त को दूसरा स्थान प्राप्त है।जिसके अनुसार विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, राष्ट्र के गौरवषाली प्रगति के लिए आवष्यक है।जिसका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 19से 22तक किया गया है।परन्तु स्वतंत्रता षक्तिषाली की स्वतंत्रता न बन जाए, इस लिए स्थान और अवसर की समानता से सम्बंधित प्रावधान भी अनुच्छेद 14 से 18 तक किया गया है।तथा देष के समस्त नागरिकों के बीच सामाजिक सौहार्द के लिए जहाँ अनुच्छेद 15 के द्वारा धर्म,मूलवंष,जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निशेध किया गया है।तो धार्मिक सौहार्द के लिए देष को 42वें संवैधानिक संषोधन के द्वारा पंथनिरपेक्ष राश्ट्र घोशित किया गया है।यही नहीं जहाँ देष की विविधता को महत्त्व देते हुए और तृणमूल स्तर तक लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए संघात्मक षासन को अपनाने के साथ ही साथ पंचायतीराज व्यवस्था को अपनाया गया है। इसके साथ ही विभाजन की दुखद अनुभूति से सीख लेते हुए देष में संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए और राश्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए कुछ संक्रमण ाकालीन उपबंध भी किये गए जिनमें अनुच्छेद 294,252,253,352,355,356,360 विषेश रूप से उल्लेखनीय है । उक्त दबाव में प्रशासन को कार्य करना होता है ।

संसदीय लोकतंत्र –आजादी के उपरान्त लंबी बहस के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने संसदीय लोकतंत्र को अपनाने का निर्णय लिया है,जो आज हमारे देष में प्रचलित है।इस षासन की प्रमुख विषेशता है की इसमें निरंतर उत्तरदायित्व पाया जाता है।क्योंकि प्रतियोगी राजनीतिक दलों की उपस्थिति में नियतकालिक चुनाव,जो सार्वजनिक वयस्क मताधिकार पर आधारित होता है।सरकार को निरंतर जनता के प्रति जबाबदेह बनाए रखता है।क्योंकि उन्हें इस बात का भय बराबर सताता रहता है कि यदि षासन जनता की न्यायसंगत आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं संचालित किया गया तो,आगामी चुनाव में जनता उन्हें सत्ता से बाहर कर,किसी अन्य दल को सत्ता में ले आयेगी।इससे सम्बंधित उपबंध भारतीय संविधान के अनुच्छेद 73 (3½में किया गया है।जिसके अनुसार मंत्रिपरिशद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदाई होगी।यहाँ स्पश्ट करना आवष्यक है कि मंत्रिपरिशद का अस्तित्व तभी तक रहता है जब तक कि लोक सभा के बहुमत का समर्थन उसे प्राप्त हो।साथ ही लोकसभा के सद्स्यों का चुनाव जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है। इस प्रकार से मंत्रिपरिशद लोकसभा के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदायी होती है।महत्वपूर्ण बात तो यह भी है कि स्वयं मंत्रिपरिशद के सद्स्य भी तो संसद के सद्स्य अनिवार्य रुप से होते हैं।इस लिए उनकी जबाबदेही प्रत्यक्ष रूप से भी हो जाती है।

इस लिए प्रषासन पर उन आकांक्षाओं की पूर्ती हेतु निरंतर दबाव रहता है।क्योकि आज लोकतंत्र ने उन्हें स्वामी के बजाय सेवक की स्थिति में लाकर खडा कर दिया है ।

कल्याणकारी राज्य – भारतीय संविधान के कई भागों में विषेश रूप से भाग 3 जो नीति निदेषक सिद्धांतों से सम्बंधित है।वह राज्य को कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करता है। जो अनुच्छेद 36 से 51 तक किया गया है। जिसमें स्पश्ट रूप से कहा गया है कि ''सरकार ऐसी सामाजिक व्यवस्था को कारगर रूप में स्थापना कर, उनका संरक्षण कर, लोककल्याण को प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा, जिससे राश्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन के सभी पक्षों में न्याय की स्थापना की जा सके और आगे भी बढ़ाया जा सके।'' ''समान कार्य के लिए समान वेतन'' ''समाज के कमजोर वर्गों को निःषुल्क कानूनी सहयता'' का भी उपबंध किया गया है। इससे आगे बढ़ते हुए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए बेरोजगार बुढापा और बीमारी और विकलांगता की दषा में आर्थिक सहयाता का भी प्रावधान किया गया है। इसके समर्थन में भारत में युवा बेरोजगारों के लिए बेरोजगारी भत्ता बुजुर्गों के लिए बृद्धावस्था पेंसन, विधवा पेंसन, विकलांग के लिए आर्थिक सहायता तथा सरकारी पदों पर नियोजन में आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है।

स्वतन्त्र और निश्पक्ष न्यायपालिका –जैसा की हम ऊपर यह चर्चा कर चुके हैं कि भारत में संसदीय षासन के साथ संघात्मक षासन को अपनाया गया है जिसमें केंद्र और राज्य के बीच तीन सूचियों के द्वारा षक्ति विभाजन किया गया है।जिसमें संघ सूची पर संघ सरकार को विधान बनाने का और राज्य सूची के विशय पर राज्य सरकार को विधान बनाने का अधिकार है और समवर्ती सूची पर दोनों को विधायन का अधिकार है।किन्तु विवाद की स्थिति में संघ द्वारा निर्मित कानून निर्णायक होता है।इसके अतिरिक्त अवषिश्ट विशयों पर विधायन का अधिकार संघ सरकार का होता है।इस प्रकार के विभाजन के बावजूद इस बात की संभावना बनी रहती है कि संघ और राज्य के बीच विशय क्षेत्र को लेकर विवाद उत्पन्न हो जाए इसका निराकरण करने के लिए संविधान के द्वारा एक स्वतंत्र और निश्पक्ष न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है,जो एक तरफ तो संविधान के संरक्षक के रूप में भूमिका का निर्वहन करती है तो दूसरी तरफ इस बात को भी देखती है की संघ या कोई राज्य सरकार संविधान के अनुरूप कार्य कर रही है तो वह कार्य या विधान वैध है अन्यथा अवैध होगी जिसे वह रद्द घोशित करती है ।

लोकतंत्र की महत्ता इस बात में है कि सम्बंधित देष के नागरिक अधिकारों का उपभोग किस प्रकार करते हैं।साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि अधिकार देने के साथ ही उन अधिकारों के उपयोग की दषाएं भी हों अन्यथा वे अधिकार कागज पर लिखी पंक्तियों के षिवाय कुछ नहीं हैं। इस बात से भारत के संविधान निर्माता अनभिग्य नहीं थे। इसी लिए वे संविधान के भाग तीन में 7 मूल अधिकारों का प्रावधान किये जिसमें से संपत्ति के अधिकार को 44वें संवैधानिक संषोधन के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। वे 6मूल अधिकार इस प्रकार हैं –

1.समानता का अधिकार 2.स्वतंत्रता का अधिकार 3.षोशण के विरुद्ध अधिकार 4.धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार 5. षिक्षा और संस्कृति का अधिकार 6 सम्वैधानिक संरक्षण का अधिकार

यहाँ हम इन अधिकारों का विस्तार से अध्ययन नहीं करेंगें यहाँ हम यह स्पश्ट करना चाहते हैं कि स्वतंत्रता के पूर्व ये अधिकार भारतीयों को प्राप्त नहीं थे, जो अब संविधान के द्वारा प्रदान किया गया है। इसमें भी सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए भी मूल अधिकार का प्रावधान है। अनुच्छेद 32 में यह उपबंध है किसी के मूल अधिकार के उल्लघन पर उसका यह मूल अधिकार है कि वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायलय में जाए और इस प्रकार के अधिकार का प्रयोग अनुच्छेद 326 के तहत उच्च न्यायलय में जाकर कर सकता है। इस प्रकार से अब भारतीय प्राषासन को अपने दायित्वों के निर्वहन में इन अधकारों की सुरक्षा के दबाव में कार्य करना होता है ।क्यों कि इसी लिए वे सरकार का चुनाव करते हैं, ऐसा न कर पाने की दषा में सरकार बदलने का भी काम करते हैं ।

अन्तर्राश्ट्रीय सहयोग और विश्व षान्ति का आदर्ष –भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के द्वारा सरकार को यह निर्देष दिया गया है कि ''वह अन्तर्राश्ट्रीय षान्ति और सुरक्षा को समृद्ध बनाए,राश्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखे। संगठित राश्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में अन्तर्राश्ट्रीय विधि एवं संधिबंधनों के प्रति आदर भाव का विकास करे तथा मध्यस्थता द्वारा अन्तर्राश्ट्रीय विवादों के निर्णय को प्रोत्साहित करे ।''इस प्रकार हम देख रहे हैं कि संविधान के विभिन्न भागों में ऐसे उपबंध है जो प्रषासन के संचालन में जनता के दबाव को स्थापित करते है और प्रषासन को जनता के स्वामी के बजाय सेवक की स्थिति में लाकर खडा कर दिया है ।

निश्कर्श –षोधपत्र के अंतिम पड़ाव पर हम इस निश्कर्श पर पहुंचे हैं कि स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटिष काल में प्रषासन की प्रकृति नियामकीय थी और भूमिका नकारात्मक थी।जनता के केवल कर्तव्य थे सरकार के प्रति। अधिकार न के बराबर थे।परन्तु आजादी के बाद लोकतंत्र में अब प्रषासन जनता के दबाव में स्वामी के रूप मे नहीं वरन सेवक की स्थिति में आ गया है। साथ ही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में षामिल होने से अब तो सवेक और सहयोगी दोनों हो गया है।

REFERENCE

डी.डी.बासु–भारतीय संविधान एक परिचय,बेयर एक्ट–.भारतीय संविधान ,डॉ. आर.एन. त्रिवेदी डॉ.एम.पी राय–भारतीय सरकार एवं राजनीति ,, डॉ. प्रभुदत्त षर्मा – भारतीय प्रषासन,
ए.एस नारंग – भारतीय षासन एवं राजनीति,J.C.Jauhari –The Constitution of India